ستمبر ۲۰۱۲ء

ماہنامہ شعاعِ عمل لکھنؤ

قَالَ اللّٰهُ تبَارَکَ وَتعَالیٰ قَدْ جَاءَ کُمْ مِنَ اللّٰهِ نُورٌ وَکِتَابٌ مُبِیْنٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب



نور ہدایت فاؤنڈیشن، حسینیہ غفرانمآبؒ، چوک، لکھنؤ-۳

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postel Regd.No. SSP/LW/NP-75/2011-13 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

SHUA-E-AMAL
Lucknow

शुआ-ए-अमल
हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

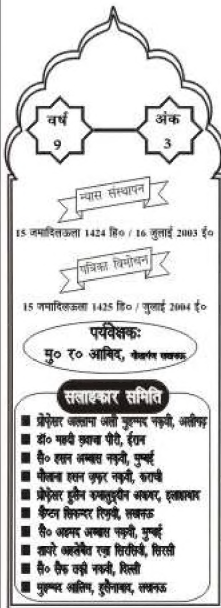
September 2012





NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
Imambara Ghufran Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Ph.:0522-2252230

बिस्मेही तआला



नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इस्लामी, ज्ञान व शोध

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

सितम्बर 2012

शुआ-ए-अमल

"लखनऊ"

संरक्षक

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै. **कल्बे जवाद** नक़वी साहब

सम्पादक

सै. मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ़' जायसी

उप-सम्पादक

क़ायम महदी नक़वी 'तहज़ीब' नगरौरी

सै० आसिफ़ अब्बास नौगांवी, हैदर अब्बास रिज़वी

मिलने का पता

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत ग़ुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ - 3

Phone No: 0522-2252230 Mobile No: 09335276180 — 09335996808

Per Copy 20/-

Annual 200/-



R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526



Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10



WEBSITE:
www.noorehidayatfoundation.com
www.al-ijtihaad.com



E_mail:
noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

वार्षिक अंशदान

1- यूरोप, अमरीका, कनाडाः
80 अमरीकी डालर
2- ख़लीजी मुमालिकः
60 अमरीकी डालर
3- एशिया, पाकिस्तानः
40 अमरीकी डालर
4- पाकिस्तान ज़मीनी डाकः
20 अमरीकी डालर

लाइफ़ मेम्बरशिपः 4000/-

विषय सूची

सितम्बर 2012ई॰
शव्वाल 1433हि॰

हज (तीर्थ यात्रा)

लेखकः आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह

अनुवादकः जनाब मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन

हज को इस्लामी इबादतों में विशेष स्थान प्राप्त है। पवित्र क़ुरान में हज न करने वाले को काफ़िर बतलाया गया है। क़ुरान का आदेश है "अल्लाह के प्रति मनुष्यों पर काबे शरीफ़ का हज अनिवार्य है, उस व्यक्ति पर जो वहाँ तक जाने की सामर्थ्य रखता हो और काफ़िर (अधर्मी) को ज्ञात होना चाहिए कि अल्लाह को किसी की आवश्यकता नहीं" अर्थात हज न करके वह दुष्कर्म करेगा, पाप का भोगी होगा तो स्वयं होगा। अल्लाह की कोई हानि नहीं होगी।

हज का एतिहासिक आरम्भ

हज करने का आदेश हज़रत मुहम्मद[स०] के समय में ही नहीं आया, अपितु इसको अति प्राचीन ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है अर्थात हज़रत इब्राहीम[अ०] जब अपने सुपुत्र हज़रत इस्माईल[अ०] के साथ मक्के की भूमि पर काबे का निर्माण कर चुके तो उस समय क़ुरआन के इन शब्दों में ईश्वर का आदेश हुआ "तुम प्रत्येक स्थान पर हज की मनाही कर दो, जिस पर सब लोग तुम्हारी आवाज़ पर दौड़ पड़ेंगे, पैदल अथवा सवारियों पर, दूर-दूर के स्थानों से सब इस ओर आया करेंगे।"

हज़रत इब्राहीम के पश्चात् भी यह प्रथा प्रचलित रही यहाँ तक के अधर्मी (मुशरेकीन) भी हज करते थे निःसंदेह उन्होंने उसमें कुछ बुरी बातें सम्मिलित कर दीं थीं, जैसे नंगे होकर हज करना। हज़रत मुहम्मद[स०] ने केवल इन दोषपूर्ण प्रथाओं का अन्त कर दिया तथा हज को उसी प्रकार बाक़ी रखा।

हज क्या है?

हज का शाब्दिक अर्थ तो विचार करना (यत्न करना) है परन्तु इस्लाम धर्म के नियमानुसार एक मुस्लिम का एक विशेष समय पर हिजाज़ स्थान की भूमि मक्के पर ईश के प्रति उन विशेष कार्यों को पूर्ण करना है जिनका हज के अंशों स्तंभोदि में संक्षेप में वर्णन किया जायेगा।

हज किस लिए?

प्रत्येक भक्ति पूजा का वास्तविक अभिप्राय जनसाधारण को उस सर्वशक्तिमान अल्लाह के होने की भावना को बाक़ी रखना है जो संसार में सुधार, सत्यता तथा मानव में उच्च चरित्र तथा आचरण की संयता की एच्छिक है। उस ईश के होने की भावना मात्र से ही मनुष्य में विलासिता एश्वर्य एवं अभिमान की भावनाएं न उत्पन्न होने पायेंगी तथा वह जन समुदाय में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेगा। क्योंकि मनुष्यों में काम भावनाऐं तथा दुष्ट विचार भी हुआ करते हैं। अतः ईश भक्ति के रूप में ही प्रत्येक मनुष्य को विभिन्न काम, भावनाओं का अन्त करने का तथा महान उद्देश्यों के हेतु कुछ संसारिक लाभों (धनादि) के बलिदान करने का अभ्यास कराया जाता है। कुछ भक्तियों में अपने आराम, सुख तथा शारीरिक सुखों का त्याग करना पड़ता है, जैसे नमाज, कुछ में दुष्ट भावनाओं तथा विलासिता को त्यागना पड़ता है जैसे रोज़ा (व्रत)। कुछ में आर्थिक हानि सहन करनी पड़ती है जैसे ज़कात, खुम्स (दानादि)।

हज पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो वे सब त्याग एवं बलिदान केवल हज में आ जाते हैं जो दूसरी भक्तियों के पृथक करने होने हैं। सुख एवं चैन का त्याग जो नमाज़ में होता है, हज में कहीं अधिक होता है। कहाँ थोड़ी देर के लिए खड़े रहना, बैठना, शीश नवाना और कहाँ हज में काबे को स्पर्श करने आदि के कार्य जिसमें नमाज़ भी एक है। फिर दूर दूर से आने वाले लोगों को तो यात्रा कठिनाईयों तथा यात्रा में भी जो अड़चने एवं बाधायें आती हैं उनका भी सामना करना पड़ता है।

दुष्ट इच्छाओं एवं भावनाओं का जो त्याग रोज़े मे करना पड़ता है उसमें तो केवल एक मास में प्रत्येक दिन केवल प्रातः से सांय तक होता है तथा हज में अहराम के पश्चात से हज की समाप्ति तक काफी समय तक उन सब बातों से वंचित करना पड़ता है जिनका त्यागना एहराम के पश्चात् अनिवार्य है, तथा आर्थिक त्याग जो ज़कात (दान आदि) में होता है, वह हज करने वाले जो दूर दूर से आते हैं उनको और अधिक सहन करना पड़ता है। इन सबसे श्रेष्ठ त्याग अधिकतर लोगों को हज करने जाने में स्वदेश-त्याग तथा मित्रों, सम्बन्धियों से भी अलग होना पड़ता है। इस प्रकार ये उन सब उद्देश्यों की पूर्ति का साधन है जो अन्य इबादतों में निहित है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण संसार के मुसलमानों का एक ही भूमि पर एकत्रित हो जाने से जो सामूहिक सुधार एवं एकता मुसलमानों की हो सकती है

वह विशेष वस्तु है।इसके अतिरिक्त हज में जिन कार्यों को किया जाता है उनमें से कुछ ऐसे हैं जो विशेष प्राचीन बातों की स्मृति के कारण हैं जिनको करने से धार्मिक भावनाओं का जागरण होता है।

हज की शर्तें

इस्लाम के नियमों ने मानव प्रकृति को छोड़ नहीं दिया है तथा असाधारण कष्टों एवं कठिनाईयों में मनुष्य को नहीं डाला है। अतः हज प्रथम तो आयु मे केवल एक बार अनिवार्य किया गया है। जब एक बार हज कर आये तो दूसरी बार हज करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। हाँ पुण्य प्राप्ति के लिए अपनी इच्छा से प्रत्येक वर्ष हज करे तो भी सुन्दर है। इसके अतिरिक्त जो एक बार भी आयु में हज अनिवार्य होता है वह भी कुछ शर्तों के साथ। यदि उन शर्तों में कोई एक न हो सके तो भी हज अनिवार्य न होगा।

इनमें 2 शर्तें तो वह हैं जो प्रत्येक अनिवार्य में हैं अर्थात बालिग़ तथा बुद्धिमान। ये इस्लाम के क़ानून की अनिवार्य शर्तें हैं जिसके बिना कोई ज़िम्मेदारी नहीं होती। लड़की के लिए बालिग़ होने की आयु 9 वर्ष तथा लड़के लिए 15 वर्ष है तथा बुद्धि का माध्यम यह है कि पागल न समझा जाता हो। इसके अतिरिक्त हज के अनिवार्य होने में ये विशेष शर्त है कि सामर्थ्य रखता हो अर्थात मक्के तक पहुँचने तथा वहाँ से अपने घर तक जाने तथा यात्रा काल में अपने तथा अपने सम्बन्धियों के खाने पीने के लिए आवश्यक व्यय का धन पास मौजूद हो चाहे वह नक़दी रूप में हो अथवा ऐसा साधन जो संतोष जनक हो यदि ऐसा नहीं तो हज अनिवार्य न होगा।

यहाँ तक कि यदि कोई मनुष्य निर्धन है मगर धनी उसे अपने पास से ले जाये और उसके सम्बन्धियों के खान पान के लिए तैयार हो तो भी हज के लिए दूसरे से लेना अनिवार्य नहीं है बल्कि उसे चाहिए कि वह इन्कार कर दे और कहे जब अल्लाह स्वयं मुझको देगा उस समय हज करूँगा, इस प्रकार मैं हज करना नहीं चाहता। हाँ यदि किसी धनी ने इतनी रक़म दे दी कि जो हज के लिए काफ़ी है तथा निर्धन ने वह रक़म ले भी ली तो उस पर हज करना अनिवार्य हो जायेगा। अब यह उचित नहीं है कि उस धन को वह अन्य कार्यों में लगा दे तथा हज के लिए प्रतिज्ञा करे कि जब अपने पास निजी धन होगा तब हज को जाऊँगा। यदि ऐसा करेगा तो हज उसके लिए करना अनिवार्य बना रहेगा और वह मनुष्य इसके न करने का स्थायी रूप से पापी (पाप-भोगी) बना रहेगा। फिर हज के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका (हज करने वाले) शारीरिक स्वास्थ्य भी ऐसा हो कि वह यात्रा कष्टों को सहन कर सके तथा मार्ग शांतिपूर्ण हो। धनव प्राणादि का कोई भय न हो।

हज के प्रकार

हज तीन प्रकार का होता है:-

(1) हज्जे अफ़राद, (2) हज्जे क़िआन (3) हज्जे तमत्तो।

पहले २ प्रकार के हज उन लोगों के लिए है जो विशेष मक्का में या मक्के से 48 मील के अन्दर रहते हैं और हज्जे तमत्तो उनके लिए है जिनके निवास स्थान 48 मील या उससे अधिक दूर हैं।

इन प्रकारों का अन्तर

हज्जे तमत्तो में 2 बार एहराम बांधा जाता है एक बार उमरा के लिए और इसके बाद तवाफ़े काबा ओर सफ़ा-ओ-मरवा के बीच दौड़ना, बाल और नाख़ून काटना होता है तथा इसके पश्चात् एहराम के प्रतिबन्ध समाप्त, यहाँ तक कि तवाफ़ुन्निसा के बाद स्त्री सम्भोग न करने का प्रतिबन्ध भी हट जाता है। इसके बाद फिर हज का एहराम बाँधा जाता है और इस एहराम के बाद अरफ़ात में वुक़ूफ़ तथा मशअ़रल हराम में जाकर ठहरना और मिना में पशु बलिदान तथा सर मुडंवाना या बाल कुतरवाना और फिर काबे के तवाफ़ (स्पर्श) के पश्चात् सफ़ा-ओ-मरवा के बीच सई तत्पश्चात् तवाफ़ुन्निसा और अन्त में मिना में ठहरना और रम्ये जमरात होता है।

परन्तु हज्जे क़िरान और इफ़राद में केवल एक ही एहराम बाँधा जाता है। इस एहराम को बाँधकर अरफ़ात में वुक़ूफ़ आदि कार्य जो वर्णन किए गये हैं किये जाते हैं। पूर्व वाले कार्य जो उमरा के एहराम के साथ वहाँ किये जाते थे यहाँ नहीं किये जाते हैं।

क़िरआन और अफ़राद दोनों के रूप बिलकुल समान हैं, केवल इतना अन्तर है कि क़िरान में एहराम के साथ ही अपने साथ बलिदान (भेंट) किये जाने वाले पशु ले जाना होते हैं और इफ़राद में इसकी आवश्यकता नहीं होती।

हज्जे तमत्तो पर दृष्टि

जब क़ुरआन में सूए-ए-बक़रह मौजूद है तो इसके पश्चात् कोई कारण नहीं है कि मुसलमानों के बीच हज्जे तमत्तो में कोई विरोध हो। परन्तु शोक है कि विरोध हुआ और वह इस प्रकार कि हज़रत मुहम्मद[स०] के बाद कुछ ख़लीफ़ाओं ने उसे नापसन्द किया और उसका विरोध किया। अतः सुन्नी इसी बात पर अड़ गये। यद्यपि क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद[स०] की सुन्नत (कार्य) के सामने किसी मनुष्य की मंत्रणा का कोई मूल्य

नहीं है। अतः सही बुख़ारी में स्पष्ट लिखा हैः- "इससे स्पष्ट है कि इस्लाम में तीन प्रकार के हज मौजूद थे।"

इस विषय में दो हदीसें लिखी हैं जिनका वर्णन यह है कि तीसरे ख़लीफ़ा उस्मान की ओर से हज्जे तमत्तो पर नियन्त्रण लगाया गया तो हज़रत अली[अ०] ने कहा जिसके शब्द एक हदीस में ये हैं "मैं किसी के कथन के कारण हज़रत मुहम्मद[स०] की सुन्नत को त्याग नहीं सकता।" दूसरी हदीस में है कि आपने स्वयं उस्मान से कहा "आख़िर तुम्हारा क्या अभिप्राय है कि तुम उस चीज़ से रोक रहे हो जिसे स्वयं हज़रत मुहम्मद[स०] ने किया।" (सही बुख़ारी प्रकाशन मिस्र जिल्द 1 पृष्ठ 175) इसी प्रकार अन्य धार्मिक पुस्तकों में भी अनेकों प्रमाण दिये हुए हैं जिनके बाद किसी मुसलमान को इस विषय में इन्कार करने का प्रश्न शेष नहीं रहता।

हज के कार्य

मक्के के बाहर से आने वालों के लिए एक स्थान प्रत्येक ओर निश्चित है जहाँ से वह हज के वस्त्र धारण करते हैं और विशेष प्रकार से हज का विचारकर कुछ प्रतिबन्ध अपने ऊपर लागू करते हैं जिसे एहराम बांधना कहते हैं। इस स्थान को "मीक़ात" कहा जाता है।

भारतवर्ष से जाने वालों के लिए मीक़ात एक स्थान है जिसका नाम "यलमलम" है। बग़ैर एहराम बांधे मीक़ात से मक्के की ओर बढ़ना महान पाप (हराम) है। यदि समुन्द्र की ओर से जद्दा जाने में स्वयं यलमलम पहुँचना नहीं होता अतः जद्दा में पहुँचकर एहराम बाँधा जा सकता है। इस प्रकार हज्जे तमत्तो जो दूर वालों के लिए अनिवार्य है उसमे निम्न कार्य करने पड़ते हैं।

1. उमर-ए-तमत्तोह का एहराम

नीयम या मनन में अर्थात मन में यह विचार करे कि मैं उमरा-ए-तमत्तोह का जो अनिवार्य है इस्लाम की नियम पूर्ति के लिए एहराम बाँधता हूँ अल्लाह के लिए।

यह वैसा ही मनन (नीयत) है जैसी नमाज़ आदि में अनिवार्य है। जिसका अभिप्राय है कि यह कार्य मैने पूर्ण विचार करके किया है तथा उसमें ईश आदेश के पालन की भावना विद्यमान हो। केवल मनुष्यों को दिखाने या किसी निम्न उद्देश्य को सामने रखकर इस कार्य को पूरा न किया जाये वरन् वह कार्य अशुद्ध होगा अर्थात उसके द्वारा जो कार्य करना उस पर अनिवार्य था पूरा न होगा।

उपरोक्त विचार के बाद तलबिया कहे अर्थात "लब्बैक अल्लाहुम्मा लब्बैक ला शरीक लक लब्बैक" अर्थ है उपस्थित हूँ, अल्लाह जगपालक उपस्थित हूँ, कोई भी तेरा शरीक नहीं (तू केवल अकेला है), तेरे धाम में उपस्थित हूँ। ज्ञात होता है जैसे अल्लाह की ओर से पुकारा जा रहा है तथा ये उस पुकार पर अपने मित्रों सम्बन्धियों तथा देश को छोड़ कर रवाना हुआ है। इन शब्दों के साथ यदि वास्तविकता का ध्यान आ जाये तो यही मानव के जीवन में महान परिवर्तन एवं पूर्ण मानवता एवं सत्यता का संचार करा सकता है। यथाकारण हमारे चौथे इमाम हज़रत ज़ैनुल आब्दीन[अ०] की एक कथा है कि आपने एक बार "अल्लाहुम्मा लब्बैक ला शरीक लक लब्बैक" की आवाज़ दी जो यकायक मूर्छित होकर ऊँट से नीचे गिर पड़ें जब मूर्छा दूर हुई तो कहा मुझे ध्यान आया कि मैं उस ईश-धाम में उपस्थित होने योग्य भी हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैने कहा "लब्बैक" उपस्थित हो रहा हूँ और उधर से आवाज़ आई "ला लब्बैक" अर्थात हमें तेरा आना स्वीकार नहीं है। इस तलबिया के बाद कपड़े एहराम के पहने एक धोती के रूप में बाँधे और दूसरे को चादर के रूप में कंधों पर डाल ले। दोनों कपड़े सिले हुए या बनयाईन की तरह बने हुए न हो न रेशम आदि के हों।

स्पष्ट है कि इस प्रकार के बड़े-बड़े धनाढ्य व्यक्तियो और सुन्दर वस्त्रधारी व्यक्तियों को भी इस सरलता एवं सादगी में होने पर बाध्य किया गया है जिसके बाद उनमें और दरिद्रों में कोई अन्तर न रह जाये। ये समानता उत्पन्न करने के वह कार्य हैं जिसे इस्लाम ने अपने नियमों मे बराबर स्थान दिया है।

निःसंदेह स्त्रियों हेतु उनके पर्दे के कारण यह विशेष बात रखी गयी है कि वह सिला हुआ कपड़ा पहन सकती हैं। इससे इस्लामी नियमों में पर्दे के महत्व का ज्ञान होता है जो दूसरे नियमों में भी बहुधा परिवर्तनका कारण बन जाता है।

उपरोक्त विधि से एहराम बाँधने के पश्चात् निम्नलिखित कार्य उस व्यक्ति पर हराम (न करने वाली) हो जाते हैंः-

1. स्वयं शिकर करना अथवा दूसरे को पता बताना, शिकार के हथियारों को देना या किसी दूसरे प्रकार से शिकार में सहायता करना।
2. विवाह करना।
3. विवाह का गवाह होना या गवाही देना।
4. सुगंध सूँघना।
5. किसी दुर्गन्ध से नाक बन्द करना।
6. तेल लगाना।
7. सिले या बिने हुए वस्त्र पहनना।
8. ऐसे जूते या मोज़े पहनना जिनसे पैर की पीठ छिप जाये।
9. श्रृंगार की दृष्टि से अंगूठी पहनना।
10. पुरुष को सर और कानों का ढाँकना या पानी में ग़ोता लगाना या सर को डुबोना।

11. पुरुष को यात्रा (आने जाने) की दशा में छतरी या वृक्ष के छाये में चलना।
12. सर या बदन से बाल उखाड़ना।
13. नाख़ून काटना चाहे एक ही उंगली का हो।
14. जूँ आदि का मारना या शरीर से अलग करना।
15. श्रृंगार की दृष्टि से काला या लाल अंजन लगाना।
16. श्रृंगार के लिए मेंहदी लगाना।
17. दर्पण (आईना) देखना।
18. दाँत या दाढ़ उखड़वाना।
19. बिना भय के हथियार लगाना या अपने पास रखना।
20. शरीर से रक्त निकालना या निकलवाना।
21. झगड़े के अवसर पर "ला वल्लाह" या "बिल वल्लाह" की सौगन्द खाना।
22. स्त्री को श्रृंगार की दृष्टि से आभूषण पहनना।
23. किसी व्यक्ति को यहाँ तक कि अपने पति को अपना श्रृंगार दिखाना।
24. स्त्री को बिना किसी पुरुष से अपने मुख पर धूप आदि के कारण नकाब डालना।
25. स्त्री को दस्ताने पहनना।
26. स्त्री-पुरुष सभी को प्रत्येक के लिए झूठ बोलना, गवाही देना या किसी पाप को करना।
27. हरम की घांस या वृक्ष को तोड़ना या काटना।

उपरोक्त प्रतिबन्धों पर दृष्टिपात करने मात्र से ही इस बात का ज्ञान होता है कि इस एहराम के बाद एक निश्चित समय तक मनुष्य को कितने कठिन प्रकार से भावनाओं, कामनाओं एवं इच्छाओं पर नियन्त्रण करने का पाठ पढ़ाया जाता है जो इसमें सफल हुआ उसे कितना मानवीय इच्छाओं पर क़ाबू प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। से स्वयं सिद्ध है।

एहराम के बाद हरम तथा मस्जिद में प्रवेश करे तथा पुनः वजू के बाद उमर-ए-तमत्तोह के तवाफ़ के विचार से सात बार काबे के गिर्द (चारों ओर) फिरना अनिवार्य है। इसके पश्चात् मक़ामे इब्राहीम में 2 रकात नमाज़ पढ़े। इसके बाद सफ़ा और मरवा के बीच 7 बार सई "दौड़" करे फिर तक़सीर करे अर्थात बाल नाख़ून आदि कटवाये जिसके बाद उमर-ए-तमत्तोह पूरा हो जाता है और बहुत सी बातें जो एहराम की दशा में मना थीं अब कर सकते हैं उदाहरणार्थ अब साधारण वस्त्र धारण कर सकते हैं। स्त्री से संभोग भी उचित है। तवाफ़ुन्निसा के बाद परन्तु शिकार आदि जो हरम के आदर, सत्कार के कारण हैं अब भी मना रहते हैं तथा हज करने से पहले हरम से बाहर निकलना भी ठीक नहीं। इसके बाद ८वीं ज़िलहिज से दुबारा एहराम बाँधा जाता है यह एहराम पवित्र मक्का में ही बाँधा जाता है। शेष आदेश इस एहराम के वही हैं जिनका एहरामे उमरा मे वर्णन हो चुका है।

अब एहराम बांधने के बाद अरफ़ात जाये और वहाँ वक़ूफ़ करे अर्थात सूर्य अस्त होने के समय से शाम तक वहाँ ठहरा रहे। शाम को नमाज़े मग़रिबैन पढ़ने को बाद अरफ़ात से मशअरल हराम को जाये तथा सूर्योदय पश्चात् मशअ़रल हराम से मिना जाये और ईदुज़्ज़ुहा के दिन जुमर-ए-अक़बा पर 7 कंकड़ियाँ एक एक करके मारे यह कंकड़ियाँ हरम की भूमि से उठायी जाती हैं और इस तरह मारी जाती हैं कि सुतून पर जाकर गिरें। इसके पश्चात् यहीं मिना में ऊँट, गाय, बकरी, दुम्बा मे से एक पशु की क़ुरबानी की जाती है।

क़ुरबानी के पश्चात् ऐसे व्यक्ति को जो पहले पहल हज को गया हो यह अनिवार्य है कि उसी दिन सर मुँडवाये और स्त्रियाँ थोड़े से बाल कतरवा लें। इसी प्रकार पुरुष भी यदि पहली बार हज कर चुका है दुबारा गया है तो सर का मुँडवाना अनिवार्य नहीं है। क़ुतरवा लेना ही काफ़ी है। यह सब काम मिना में किये जायेंगे, जब पूरे हो जायेंगे तो जाकर काबे का तवाफ़ करे और 2 रकात नमाज़े तवाफ़ पढ़े जिसके पश्चात् सुगन्ध सूँघना ठीक है, पुनः सफ़ा व मरवा के बीच सई करे और अन्त में फिर तवाफ़ुन्निसा करे और 2 रकात नमाज़े तवाफ़ पढ़े जिसके बाद स्त्री संभोग उचित हो जाता है।

इसके पश्चात् ज़िलहिज की 11वीं अथवा 12वीं की रात्रि में मिना मे रहे तथा 11वीं तथा 12वीं को दिन में जुमर-ए-अवला, जुमर-ए-वस्ती, जुमर-ए-अक़बा तीनों पर क्रमशः 7–7 कंकड़ियाँ फेंकना अनिवार्य है जिसके पश्चात् हज पूर्ण हो जाता है। इसके बाद काबे से जाने के लिए पवित्र मक्के पलटना पुण्य कर्म (सुन्नत) है तथा फिर पवित्र मदीना जाकर हज़रत मुहम्मद[स०] के रौज़े की ज़्यारत (देखना) अत्याधिकर पुण्य कर्म है। जिसे करना अनिवार्य तो नहीं परन्तु आवश्यक (सुन्नते मुअक़्क़दा) है जिसको यथासम्भव नहीं छोड़ना चाहिए। हज के पूर्व भी ज़्यारत को जाना ठीक है इस परिस्थिति में पहले यदि मक्के में प्रवेश करे तो उसके पूर्व एहराम-ए-उमर-ए- मुफ़रदा को बाँधना चाहिए इसलिए कि उमरा-ए-तमत्तोह के एहराम के बाद पुनः बना हज किये मक्के से निकलना उचित न होगा। मदीने की ज़्यारत (दर्शन) के बाद जब हज का अवसर निकट आये तो वहाँ से वापस आये और अब उस ओर जो मीक़ात है उससे उमरा-ए-तमत्तोह का एहराम बाँधे। इसके बाद उमरा और हज के कार्य पूर्वभूत होंगे।

ज़िन्दगी का सिस्टम

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादनः नूरे हिदायत फ़ाउन्डेशन

क़िस्त-5

'सूझबूझ' और न्याय इन्साफ़ः

"ख़ुदा" जो कुछ करता है वह काम कैसे हो सकते हैं? इस जगह एक गिरोह यह मानता है कि वही अच्छाई और बुराई दोनों का पैदा करने वाला है और ये कि अत्याचार, बेइन्साफ़ी, झूठ अदि सारी बुराईयाँ इसके लिए जायज़ और ठीक हैं। वह जो चाहे करे उसके लिए कोई रोक नहीं है। ज़ाहिर है जब ख़ुदा की ज़ात के बारे में हमारा नज़रिया/धारणा इस दर्जे तक सीमित रहेगा तो फिर उसके बाद तो और गिरावट होती चली जायेंगी। कहावत मशहूर है - "वज़ीरे चुनीं शहरयारे चुनाँ "जैसा वज़ीर वैसा बादशाह।

जब ख़ुदा इस तरह का है तो उसका रसूल (दूत) उसी तरह से होगा और जब रसूल का दर्जा ये होगा तो उसके उत्तराधिकारी ऐसे ही होंगे और जब अगुवाओं का ये हाल है तो फिर अनुयायिओं और चेलों का पूछना ही क्या ?

जब ख़ुदा के लिए दोष सही है तो फिर नीचे के दर्जो में तो इस्मत (निष्पाप होने) का ख़्याल ही असम्भव है।

इस विश्वास से बुरी बातों की बुराई बिल्कुल हल्की हो जाती और ज़ुल्म अन्याय वग़ैरह की अहमियत इन्सान को महसूस नहीं होती। मुमकिन है कि इस विश्वास के रखने वालों में भी ऐसे लोग हों और सचमुच होते हैं जो अपने नैतिकता से सभ्य इन्सान कहे जा सकें मगर ये उनके विश्वास का चाहना नहीं है बल्कि उनके अच्छे स्वभाव, प्रकृति की ख़ूबसरती का नतीजा है। इसके ख़िलाफ सच्चा मज़हब यह सिखाता है कि ख़ुदा की ज़ात सारी बुराईयों से दूर और पाक है। वह न्यायसंग और सूझबूझ वाला है। उसका हर काम अच्छाई ही है और बुराई उसके यहां नहीं है कुराने मजीद ने ख़ुदा की ख़ूबियों के बयान में इस अ़मली (Practical) पहलू पर बहुत ध्यान दिया है -"अल्लाह ज़ालिमों अत्याचारियों को नही चाहता। अल्लाह उपद्रव करने वालों को नही चाहता।"

फिर जब वह दूसरों से ज़ुल्म और बवाल वग़ैरह को पसन्द नहीं करता तो अपनी तरफ़ से इन चीज़ों को कैसे पसन्द कर सकता है इसका ये मतलब नहीं कि उसकी क़ुदरत सामर्थ्य सीमित है या वह बेबस है बल्कि यह नहीं हो सकता है कि वह अपने निजी कमाल पूरापन और सूझबूझ की ऊँचाई के लेहाज़ से इन बातों को करे। इस विश्वास के साथ इन्सान के दिमाग़ में इन बातों की बुराई और बुरे कामों से नफ़रत का एहसास पैदा होता है और उनमें प्राकृतिक तौर पर इन चीज़ों से दूर रहने का ख़्याल पैदा होता है ।

बेबसी व स्वेच्छा/विवेकः

एक गिरोह का मानना है कि इन्सान जो कुछ काम करता है वह ख़ुदा की तरफ़ से है, इन्सान नमाज़ पढ़ता है तो वह नहीं पढ़ता बल्कि ख़ुदा पढ़वाता है, और ये शराब पीता है तो ख़ुद से नहीं पीता बल्कि ख़ुदा पिलवाता है। इन्सान एक बेजान औज़ार की तरह ख़ुदा के हाथ में चलता है और ये अपनी तरफ़ से कोई बात नहीं करता । ग़ौर कीजिए ये मानना अगर दुनिया के दिमाग़ पर पूरी तरह असर करे तो दुनिया में कोई मुजरिम अपने जुर्म के बाद लाज महसूस ही न करे और न कोई पापी गुनाह का इक़रार करे, किसी इन्सान को सुधारने का जो रास्ता है उसके दरवाज़े बन्द हो जाएं और सिखाई पढ़ाई बेकार जाए क्योंकि इस मानने से दुनिया में जो कुछ काम होते हैं वह इन्सान की तरफ़ से नहीं बल्कि ख़ुदा की ओर से होते हैं बल्कि इस लेहाज़ से तो एक पापी और मुजरिम इन्सान इज़्ज़त के लायक़ है कि वह अल्लाह के चाहे को पूरा करने का ज़रिया और ख़ुदा की मर्ज़ी को कर्म से ज़ाहिर कर रहा है।

क्या इस तरह जीवन के सिस्टम को करने से

सुधारा जा सकता है, और इन्सान के चाल चलन को पूरी तरह अच्छा बनाना मुमकिन है ?

आइम्मए मासूमीन (बे गुनाह इमामों[अ०]) की शिक्षा और मज़हब का सही मानना ये है कि इन्सान जो कुछ करता है उसका वह खुद ज़िम्मेदार है, अच्छे काम भी वही करता है और बुरे काम भी वह अपने चाह और विवेक से करता है। बेशक अच्छे कामों में ख़ुदा की तरफ़ से मदद होती है जिसका नाम है ''तौफ़ीक़'' (यानी ख़ुदा बन्दे की नेक चाहत के अनुसार नेक रास्ते पैदा कर देता है) मगर इसकी वजह से वह इन्सान के चाहे कर्म की हद से बाहर नहीं होता, और अक्सर बुरे कामों की वजह बाहरी बहकावे और शैतान के वसवसे होते हैं जिससे इन्सान बुराई को कर डालता है। मगर फिर भी इन्सान बेबस नहीं होता और इनाम व सज़ा, सब इन्सान के निजी कामो का नतीजा है। इस लेहाज़ से हर मुसलमान को अपने कर्म को सुधारने का मौक़ा मिला है और उसका फ़र्ज़ है कि वह हर गुनाह से दूर रहे और अच्छे आमाल का पाबन्द (नियमित) बने। ऐसा न करने की सूरत में मुजरिम वही होगा और उसकी ज़िम्मेदारी किसी दूसरे पर लागू नहीं होगी ।

बदाः

यहूदियों का मानना था कि खुदा को जो कुछ मुक़र्रर (निश्चित) करना था उसे 'अज़ल' (वह समय जब सृष्टि की रचना हुई) में तय कर चुका। अब वह कोई बदलाव नहीं कर सकता। कुर्आन मजीद में इस मानने का इन शब्दों में बयान किया गया है और इस विश्वास का खण्डन किया गया है कि -

''ये कहते हैं कि ख़ुदा के हाथ बंध गये हैं, खुद इनके हाथ बंधे हुए होंगे और ये लानत (धिक्कार) के लायक़ हैं अपने इस कथन की वजह से, बल्कि उसके हाथ खुले हुए हैं वह जिस तरह चाहता है देता है''।

बुरे भाग्य से मुसलमानों के एक बड़े गिरोह में भी ये ख़्याल पैदा हो गया कि ख़ुदा के मुक़र्रर (निश्चित) फ़ैसलों में बदलाव नामुमकिन है यानी ख़ुदा ने जो एक बार फ़ैसला कर दिया उसमें बदलाव असम्भव है। वह कहते हैं कि फ़ैसले का बदलना पछतावे का नतीजा होता है और शर्मिन्दा वही होता है जो नतीजे से बेख़बर हो। ख़ुदा के फ़ैसले में बदलाव को मानना उसके जानने के फैलाव (ज्ञान का विस्तार) का इन्कार करना और उसका नतीजा अनजान ठहराना है, इसलिए ये सही नहीं है ।

शिया फ़िरके के विश्वास में ख़ुदाके हुक्म समझ और वजह के लेहाज़ से होते हैं, इसलिए सूरते हाल (परिस्थितियाँ) और वजहों के बदल जाने के साथ उन हुक्मों में भी बदलाव होना चाहिए। इसी का नाम ''बदाअ'' है। ये कहना कि फ़ैसले में बदलाव हमेशा पछतावे और नतीजे के ना जानने ही का है, ये सही नहीं है, क्योंकि ये हो सकता है कि फ़ैसला किसी वक़्ती समझ की बुनियाद पर किया गया हो, चाहे फ़ैसला करने वाले को पहले से मालूम हो कि आने वाले समय में इस तरह से बदलाव होगा ।

इसकी मिसाल यह है कि आप के यहां नौकर की तनख़्वाह निश्चित है और वह सात रूपये महीना है। एक नया नौकर आपके यहां आता है, हो सकता है कि आप जानते हों कि ये इतना वफ़ादार इतना कुशल और बासलीक़ा है कि इसकी सेवाओं के बदले में मुझ को बाद में एक रुपया महीना इसकी तनख़्वाह में बढ़ाना पड़े। मगर इस वक़्त ऐसी कोई वजह नहीं पायी जाती जिस की वजह से आप अपने उसूल को तोड़ दें इसलिए आप खुद इस नौकर को भी यही बतायेंगे कि तुम्हारी तनख़्वाह सात रूपया महीना है और दूसरे लोगों से भी यही कहेंगे और रजिस्टर पर भी यही दर्ज करेंगे। बेशक जब वह कोई ऐसा काम करेगा तो आप इसकी तनख़्वाह का सुबूत पेश करेंगे तो आप इसकी तनख़्वाह बढ़ा देंगे उस वक़्त खुद उससे भी कहेंगे कि तुम्हारी तनख़्वाह बढ़ा दी गई और अपने रजिस्टर में भी बदलाव करेंगे, मगर क्या इसकी वजह से आपकी दूरअन्देशी और नतीजा (Result) जानने पर असर पड़ता है? हरगिज़ नही ।

यूँ ही समझ लीजिए, ख़ुदावन्दे आ़लम के फैसले समझ और वजह पर होते है। वह कयामत तक की बदलने वाली तमाम हालतों को हमेंशा से जानता है, मगर किसी ख़ास वजह के सामने आने से पहले उसके मुताबिक़ (क़रार देना) निश्चित करना सूझबूझ के ख़िलाफ है, लेहाज़ा जैसा वक़्त होगा वैसी बात होगी। फ़ैसला एक काम है और जानने का गुण है। अ़मल बदलता है, मगर

इल्म हमेशा से है इसमें बदलाव हरगिज़ नहीं है।

अब देखिये कि इस मानने का इन्सान के कामों पर क्या असर पड़ता है? ज़ाहिर है कि अक्सर इन्सान खुदगर्ज़ (स्वार्थी) होते हैं, यानी अपना कोई फ़ायदा चाहते हैं, और ऐसे ऊँचीं नज़र वाले लोग कम होते हैं जो सिर्फ़ ''मर्जी-ए-मौला अज़ हमा औला'' यानी ''मालिक की मर्ज़ी सबसे ऊपर है'' के उसूल पर काम करते हों । अगर इन्सान यें समझे कि जो कुछ वह करता है, उसका कोई नतीजा नहीं है और ख़ुदा के जो फ़ैसले मख़लूक की पैदाइश के दिन हो चुके हैं वह होकर रहेंगे तो इन्सान दौड़ धूप (संघर्ष), कोशिश और कर्म को बेकार समझेगा और मेहनत व परिश्रम का कोई फ़ायदा महसूस नहीं करेगा, क्योंकि जो कुछ होने वाला है वह तो हर हाल में होगा, इसके किये से कुछ नहीं होगा। लेकिन अगर इन्सान ये समझेगा कि हमारे काम और अ़मल से भाग्य भी बदल जाता है और ख़ुदा के फ़ैसले भी हमारे हालात के लेहाज़ से बदलते हैं तो उसके अन्दर एहसास पैदा होगा कि हम अपने काम को और अच्छा बनायें ताकि हमें अच्छा फल मिल सके।

ख़ुदा अपने बन्दों के लेहाज़ से सिर्फ़ एक हाकिम की हैसियत नहीं रखता जिसको ज़बरदस्ती सिर्फ़ अपने हुक्म के मनवाने से ही मतलब हो बल्कि वह इसके साथ एक भलाई चाहने वाले सलाहकार और मशवरा देने वाले की हैसियत भी रखता है इसलिए वह अपने हुक्मों में एक तरफ़ तो शासक के अन्दाज़ में आख़ेरत के इनाम और कहना न मानने पर आख़ेरत की सज़ा का पैग़ाम देता है और दूसरी तरफ़ वह इन आमाल के फ़ायदों को ज़ाहिर करते हुए इनके दुनियाँ के फ़ायदों और विशेषताओं को बताता है।

सदक़ा बला (मुसीबत) को टालता है, गरीबों की देखभाल, ख़बर लेने (मदद) से उम्र लम्बी होती है, वग़ैरह-वग़ैरह।

ये बातें इन्सान को नेक अ़मल के लिए उकसाती है यानी अच्छे से अच्छे काम की तरफ़ ले जाता है।

मान लीजिए वह हज़रत ईसा[अ०] का मशहूर वाक़िया कि आप ने एक दुल्हन के बारे में हुक्म लगाया था कि वह कल मर जाएगी, और दूसरे दिन ऐसा नहीं हुआ और जांच पड़ताल पर यह मालूम हुआ कि उसने एक भूखे को खाना खिला दिया था इसलिये बला टल गई और उसकी उम्र बढ़ गई । ये वाक़्या आपके सामने हुआ होता तो क्या इसी तरह आप फ़क़ीरों को टाल दिया करते और ग़रीबों की तरफ़ से मुँह फ़ेर लिया करते जैसे अभी करते हैं ।

क़ुर्आन मजीद और इसकी आयतों को ग़ौर व फ़िक्र (चिन्तन व मनन) की आँख से देखिए और मज़हबी शिक्षाओं पर ग़ौर कीजिए तो आपको मालूम होगा कि मज़हब के माने हुए अक़ीदे व तालीमों में बहुत सी ऐसी बातें हैं जिन की असली बुनियाद ही यही है कि ख़ुदा के फ़ैसले वजहों और समझबूझ के लेहाज़ से बदल जाते हैं और यही वह है जिसका नाम 'बदा' है, जिस पर हमें ताना दिया जाता है । आईये ज़रा इसे समझें ।

नीचे लिखी बातों को देखिए :-

(1) मग़फ़ेरत (क्षमा/माफ़ी) -

सारे मुसलमान मानते हैं कि ख़ुदा गुनाहों को माफ़ करता है । सवाल ये पैदा होता है कि जिस वक़्त गुनाह किया उस वक़्त ये श़ख्स अज़ाब का हक़दार (पात्र) बना या नहीं ? तो फिर माफ़ी के कोई मानी नहीं और अगर बन गया तो मग़फ़ेरत (बख़्शिश) के बाद वो हुक्म बदला या नहीं ? अगर नहीं तो माफ़ी कोई चीज़ ही नहीं और अगर बदला तो यह वही है कि जिसको नकारा जा रहा था। इस विषय पर क़ुर्आन की वह सारी आयतें पेश की जा सकती है जिनमें माफ़ी का बयान है।

(2) तौबा -

बन्दों की तौबा जो सच्चे दिल से हो क़ुबूल होती है, इस अक़ीदे को सारे मुसलमान क़ुबूल करते हैं। इसके मानी यही है कि इन्सान गुनाह करने के बाद ख़ुदा के अज़ाब का मुसतहक़ बन गया था और तौबा की वजह से जो इन्सान का अ़मल है, इस फ़ैसले में बदलाव होगा। उस वक़्त ये जहन्नुम का हक़दार था और अब ये जन्नत का हक़दार है ।

क्या ये वही चीज़ नहीं है जिसे 'बदाअ' कह कर उस पर एतराज़ किया जाता है?

(3) शफ़ाअ़त -

नबियों(अ०) और मासूमों(अ०) बल्कि आम मोमिन और ख़ास तौर से आख़री नबी हज़रत मोहम्मद(स०) के लिए शफ़ाअत का दरजा तमाम मुसलमानों के नज़दीक साबित है, यानी आप की सिफ़ारिश बहुत से गुनाहगारों की माफ़ी (बख़्शिश) की वजह होगी। अब बताईये कि इस सिफ़ारिश के पहले ये लोग जहन्नम में जाने वाले थे या नहीं, अगर नही तो सिफ़ारिश की जरूरत नहीं और अगर थे तो शफ़ाअ़त से फ़ैसला बदला या नहीं।

(4) दुआ़ -

कुर्आन मजीद में दुआ़ का हुक्म मौजूद है और इसके कुबुल होने का वादा किया गया है। मुसलमानों का मानना भी इसके मुताबिक़ है, मगर क्या इस ख़्याल के मुताबिक़ कि जो कुछ फ़ैसला होना था, हो चुका अब वह बदलने के क़ाबिल नहीं है दुआ़ का कोई नतीजा सामने आ सकता है और दुआ़ के कुबूल होने के कोई मानी हो सकते हैं? दुआ़ और उसके कुबुल होने से साफ़ ज़ाहिर होता है कि इन्सान के कर्मोंसे मोक़र्रर (निश्चित) बातों में बदलाव हो सकता है, इसी का नाम 'बदा' है।

इसके अलावा अगर ग़ौर किया जाए तो कुफ़्र के बाद इमान लाने से नजात का हुक्म बिल्कुल इसी बुनियाद पर निर्भर है ।

एक शख़्स पहले काफ़िर (नास्तिक) था, इसके लिए ख़ुदा का फ़ैसला क्या है? कुर्आन कहता है कि वह "हमेशा जहन्नम में रहेगा"। आप किसी नबी और रसूल से पूछिये तो वह इसके बारे में यही हुक्म लगाएगा इसलिए कि इसके काफ़िर होने का नतीजा यही है। इसके बाद वह ईमान ले आता है ख़ुदा को मान लेता है और '*ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह*' ज़बान पर लाकर सच्चे दिल से मुसलमान हो जाता है, बताईये अब इसका क्या हुक्म है? ये जन्नत का हक़दार है और अगर अभी दुनिया से उठ (इन्तेक़ाल) जाए, तो बिला हिसाब जन्नत में जायेगा। देखिए इन्सान के काम और हालात के बदलने से फ़ैसले में कितना बड़ा बदलाव हो गया।

इस लेहाज़ से देखा जाए तो कुर्आन शुरू से लेकर आखिर तक 'बदा' की शिक्षा देता है, क्योंकि वह काफ़िरों को ईमान लाने की दावत देता है, और उस पर नजात (मोक्ष) का वादा करता है और ये कहता है कि ऐसा न करोगे तो तुम जहन्नम में जाओगे । इसके मानी ये है कि वह अपने फ़ैसलों को इन्सान के कर्मो के साथ जोड़ देता है और इन्सान के हालात के बदलने से फ़ैसलों को बदल देता है और इन्सान के कामों का सुधार इसी विश्वास से जुड़ा है।

भला अगर अबुजहल को मालूम हो जाए कि मैं लाख मुसलमान हो जाऊँ मगर जो मेरे बारे में फ़ैसला हो चुका, वह बाक़ी रहेगा तो उसे इसलाम लाने की ज़रूरत क्या है और अगर एक गुनहगार इन्सान ये समझ ले कि अब मैं लाख अच्छे काम करूँ, मगर मेरे बारे में जो फ़ैसला हो गया है वह बदल नहीं सकता, तो उसे क्या पड़ी है कि वह अपने मन की चाह के ख़िलाफ अच्छे कामों पर चलने लगे। इन्सान के कर्मों का सुधार इसी विश्वास पर निर्भर है कि इन्सान के हालात के बदलने के लेहाज़ से खुदा के फ़ैसले बदल सकते हैं।

मैने जो कुछ सुर्ख़ियाँ दी हैं, इनमें कुर्आन की ढेरों आयतें लाई जा सकती हैं और इसके अलावा बहुत सी ख़ास आयतें हैं जो 'बदा' के मसले को साबित करने के लिए अटल और अचक है। चूँकि मैने इस बारे में अब तक कभी क़लम नहीं उठाया था इस लिए यहां मैने ज़रा विस्तार से काम लिया और अगर मौक़ा मिला तो बाद में एक किताब लिखने के लिए लिख दिया। बाद में अगर मैं न भी लिख सकूँ तो इसी छोटे से बयान को सामने रख कर किसी दूसरे लेखक के लिए बड़ी किताब लिख लेना आसान है ।

नबूवत (नबी का होना):

खुदा के होने, ज्ञान और उसके गुणों के बाद नबूवत का दर्जा है। नबी की ज़रूरत के सिलसिले में सारे मज़हब के लोगों में कोई मतभेद नहीं है । हाँ नबी की विशेषताओ के सिलसिले से अलग अलग विचार हैं।

बहुत से लोग नबियों के लिए निष्पाप होना (सारे गुनाहों से पाक और अलग थलग होना) को ज़रूरी नहीं समझते और किसी न किसी हद तक गुनाह की इजाज़त देते हैं, चाहे ये कि वह बड़े गुनाहों से पाक होते हैं मगर छोटे गुनाहों को कर सकते हैं । चाहे ये कि

बेसत (नबी के नबी होने का ऐलान) के बाद गुनाहों से पाक है, मगर बेसत से पहले गुनाह कर सकते हैं। चाहे ये कि जान-बूझ कर गुनाह नहीं करते, मगर ग़लती या भूल व चूक से गुनाह हो सकता है। शिया फ़िरके का यह विश्वास है कि नबी हर हाल में सारे गुनाहों से पाक हैं।

अक़्ली दलीलों और तर्क से ये बात बिल्कुल साफ़ है नबी आते हैं अल्लाह के बन्दों को रास्ता दिखाने के लिए, इसीलिए इनके हाथों किसी तरह ख़ुदा के बन्दों के बहकने का खटका नहीं होना चाहिए और अगर नबी किसी तरह भी ग़लती करेगा तो उससे किसी न किसी हद तक ख़ुदा के बन्दों का भटकना बहकना और ग़लतफ़हमी का शिकार होना मुम्किन है । अब देखिए कि इन्सान के कामों पर इस बात का क्या असर पड़ता है? ये बिल्कुल साफ़ है। अगर ये मान लिया जाए कि अम्बिया भी गुनाह करते हैं तो आम इन्सानों की निगाह में गुनाह करने की कोई अहमियत बाक़ी नहीं रहेगी बल्कि मैं तो समझता हूँ कि ये मानना दुनिया को गुनाह करने के लिए उकसाता है क्योंकि हर कोई समझेगा कि जब नबी जैसे ऊँचे, अल्लाह वाले लोग गुनाह कर सकते हैं तो हमें गुमराह करने के बाद दोषी कैसे ठहराया जा सकता है ।

इसके ख़िलाफ ये मानना कि अम्बिया का दामन गुनाहों से बिल्कुल पाक है, ये ख़ुदा के बन्दों का सुधार करता है और कर्मों के पूरे विकास की वजह और उसका ज़िम्मेदार हो सकता है।

इमामत (इमाम का होना):

रसूल के बाद लोगों को सही रास्ता दिखाने और धर्म के बाक़ी रखने के लिए एक प्रशासक की ज़रूरत है। मुसलमानों में से एक तबक़े (वर्ग) का ख़्याल है कि इसके चुनाव का हक़ जनमानस (आम लोग) को होना चाहिए।

वह कहते हैं कि इमामत का चुनाव रसूल(स०) की तरफ़ से होना और एक के बाद दूसरे इमामों का सिलसिला होना जनतन्त्र से टकराता है। मगर ये ख्याल बिल्कुल ग़लत है जनतन्त्र यानी आम लोगों के चुनाव का उसूल तो उसी वक़्त टूट गया जब नबी का चुनाव हमारे हाथ नहीं हुआ और जब हम नबी की नबूवत को ख़ुदा की तरफ़ से मान चुके तो किसी दूसरे को इस में क्यों, क्या करने का या इसके ख़िलाफ़ अपने चुनावी हक़ को पेश करने का क्या हक़ है।

चूँकि आम इन्सान जज़्बात (भावनाओं) से जुड़े होते हैं और हर चीज़ में स्वार्थ और अपना मतलब देखते हैं इसलिए आम लोगों का चुनाव बिल्कुल निःस्वार्थ और निष्पक्ष तरफ़दारी से ख़ाली नहीं समझा जा सकता और इसमें ग़लती भी मुम्किन है। इसलिये ज़रूरत है कि लोगों को रास्ता दिखाने वाले (अगुआ) को ख़ुदा अपनी ओर से बनाये और जिस तरह नबी उसकी तरफ़ से भेजा हुआ होता है उसी तरह नबी का वारिस उत्तराधिकारी भी उसी की तरफ़ से हो ।

वह लोग जो इमाम के चुनाव को अपने हाथ में लेते हैं वह उसके लिए मासूम (सारे गुनाहों से पाक) होना ज़रूरी नहीं समझते क्योंकि आम इन्सान की निगाह इस्मत (बेगुनाही) तक जा ही नहीं सकती । मगर जबकि इमाम की नियुक्ति ख़ुदा की तरफ़ से है तो उसे मासूम होना भी ज़रूरी है वरना उसके हाथों ख़ुदा के बन्दों के गुमराह होने का शुब्हा होगा और उसकी ज़िम्मेदारी पलट कर ख़ुदा पर जायेगी ।

इसका इन्सान के आमाल पर वही नतीजा होगा जो हम ने अम्बिया की इस्मत में इसके पहले बयान किया है यानी जब इमाम, अगुवा और रास्ता दिखाने वाला पापी है तो आम लोगों की निगाह में गुनाह से कोई डर बाक़ी नहीं रहेगा बल्कि इन को गुनाह करने के लिए एक सनद (प्रमाण) मिल जायेगा। इन्सान को गुनाहों से दूर रखने के लिए यही मानना ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाने वाला है कि इमाम (अ०) गुनाहों से दूर और मासूम (सारे गुनाहों से पाक) होते हैं।

तवल्ला (लगाव) और तबर्रा (दूर रहना):

ये इमामत के विश्वास से ही जुड़ा एक पहलू है। शियों का मानना है कि जो श्रेष्ठ लोग हैं और सच्चे अगुवा हैं उनके साथ लगाव और जो ग़लत दावेदार या झूठे अगुवा हों उनसे अलगाव और दूरी अख़्तियार करना और नाता तोड़ लेना ज़रूरी है। पहले का नाम "तवल्ला" और दूसरे का नाम "तबर्रा" है, ये दोनों विश्वास और कर्म से जुड़े हैं, जो रूह और जिस्म दोनों

के साथ जुड़े हैं। विश्वास और ज़मीर (अन्तःकरण) के इक़रार का नतीजा यही है कि वह बात ज़बान से ज़ाहिर हो, हालात मुनासिब हों और दिल की बात दिल में छिपाए रहने की कोई ख़ास वजह न हो। हक़ का ज़ाहिर करना बहरहाल इन्सान का प्राकृतिक हक़ है। हाँ, सामाजिक और शहरी अच्छाई के लेहाज़ से खुद इन्सान को अपनी देखरेख करना ज़रूरी है।

लेकिन अच्छे को अच्छा कहना और बुरे को बुरा कहना "आज़ाद प्रकृति" की एक स्वभाविक माँग है, जिसको न मानना प्रकृति से जंग करने के बराबर है। मगर लोग जो अपनी तरफ़ किसी कमी का एहसास करते हैं, वह इस बात का शिद्दत के साथ विरोध करते हैं। वह कहते हैं कि अच्छे को अच्छा तो कहो मगर बुरे को बुरा हरगिज न कहो ।

मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' ने जो मुसलमानों के एक ऊँची समझबूझ वाले आलिम और बड़े राजनेता हैं, उन्होने अपने एक लेख में इस टापिक पर बहुत खुली हुई बात की है, जो 'इमामिया मिशन' की तरफ़ से "खिलाफ़त व इमामत" पार्ट-(5) के साथ परिशिष्ट में छापा गया है। आपको इससे 'तवल्ला' और 'तबर्रा' का नतीजा भी मालूम हो जाएगा। सच में बुराईयों से नफ़रत उस वक़्त तक पूरी नहीं होती जबतक बुरे लोगों को इन्सान बुरा न समझे और उनसे दूरी का एहसास बाक़ी न रखे। बुरे लोगों से रिश्ता तोड़ लेना और उनसे दूरी का इज़हार इन्सान की ज़ेहनियत में बुराई से ताल्लुक़ तोड़ लेने और उससे दूर रहने का जज़्बा इस तरह मज़बूत कर सकता है, जिसके बाद इन्सान खुद अपने कर्म से उन बुराईयों को हरग़िज नहीं करेगा।

कयामत (प्रलय):

इनाम और सज़ा के लिए इस ज़िन्दगी के बाद एक दूसरा काल निश्चित है जहाँ अच्छे और बुरे कामों का बदला दिया जाएगा। ये सब मुसलमानों का माना हुआ विश्वास है। मगर आर्य समाज के लोग इनाम और सज़ा के लिए एक दूसरी बात मानते हैं जिसका नाम है "आवागमन" इसके मानी ये है कि इन्सान की रूह एक जन्म में जो अच्छे या बुरे कर्म करती है उसका बदला दूसरे जन्म में दिया जाता है, चाहे दूसरे इन्सान के जिस्म में या जानवर, पेड़-पौधे या पत्थर की के रूप में, उनका मानना है कि रूह और शरीर दोनों हमेशा से हैं और रूह बराबर अलग-२ जिस्मों में चक्कर लगाती रहती है और ये आवागमन का चरख़ा बराबर चलता रहता है और कभी ख़त्म होने वाला नहीं ।

ये बात अक़्ली हैसियत से बिल्कुल ग़लत है । इनाम और सज़ा का असली राज़ सुख और दुख के एहसास में छिपा है जो इन्सान को मिलता है यानी इन्सान आराम या तकलीफ़ का एहसास करता है जिसका ताल्लुक़ समझ और सूझ-बूझ से है और यह चीज़ इस आवागमन के होते बिल्कुल नहीं पाई जाती क्योंकि जब कोई रूह नये जन्म में आती है तो उसे कोई एहसास नहीं होता कि उसने पहले जनम में क्या किया था और उसका क्या बदला हो रहा है ।

इसके अलावा अगर उसको नया जन्म जानवर या पेड़ या पत्थर के रूप में मिल जाए तो चूँकि इस हालत में अक़्ल और तमीज़ मौजूद ही नहीं होती, इसलिए अब इसके कर्म ऐसे नहीं समझे जा सकते जो इनाम और सज़ा को कहते हों इसलिए कोई वजह नहीं कि ये रूह फिर किसी दूसरे जिस्म में जाए और अगर वहां जाए तो उसे न कोई आराम होना चाहिए और न कोई तकलीफ़। हालांकि इनके ख़्याल में रूह के एक जन्म में अच्छे या बुरे काम का बदला दूसरे जन्म में मिलने का सिलसिला कभी ख़त्म नहीं होता और अच्छी या बुरी यानी आराम और तकलीफ़ से दुनिया का कोई जानवाला (जन्तु) बिल्कुल ख़ाली नहीं है ।

फिर ये देखिये कि रूहें नष्ट होने वाली नहीं, हमेशा से हैं, इसका मतलब ये है कि नई रूह पैदा तो होगी नहीं। अब ग़ौर कीजिए कि सिरजन के पहले दिन सब रूहें इन्सान के ढाँचे में थीं या कुछ जानवरों और कुछ पेड़-पौधों और कुछ पत्थरों के रूप में। ऐसे में पहली बात तो ये है कि इसकी कोई वजह सही नहीं मालूम होती कि कुछ रूहों को जानवरों या पेड़-पौधों या पत्थरों के रूप में रखा जाए, जब ये बुरे कर्मों का नतीजा होता है और बुरे काम होनी चीज़ हैं जो बाद में होते हैं । इसके अलावा ये देखना चाहिए कि वह रूहें जो इन्सान के ढाँचे में हैं उनके आमाल में भी फ़र्क़ होगा। जिनमें से कुछ

जानवरों के जिस्म में जाएंगी, कुछ पेड़ पौधों और कुछ पत्थरों के और फिर वह कि जो इन्सान के रूप में आयेंगी उनमें भी ये फ़र्क़ रहेगा। इसका नतीजा ये है कि इन्सानों की गिनती में बराबर कमी होती रहे और बराबर घटती रहे। हलांकि आज इसके बिल्कुल उल्टे दिखाई देता है। अगर ये कहा जाए कि जानवर और पेड़-पौधे और पत्थरों के चक्कर से गुज़रके और सज़ा पूरी करने के बाद फिर रूहें पाक होती हैं, और इन्सानों की शक्ल में सामने आती है तो आज का इन्सान जो उस दौर को ख़त्म करके आने वाली रूहों को लेकर आया है, इनको न कोई ग़म होना चाहिए न कोई ख़ुशी, न कोई आराम न कोई दुःख होना चाहिए। ये भी जो दिखाई देता है उसके ख़िलाफ है। दुनिया का कोई इन्सान इन हालात यानी ख़ुशी या ग़म से हरगिज़ ख़ाली नहीं है ।

बहुत से वह बच्चे हैं जो पैदा होते ही मर जाते हैं, इन्हें दुनिया में न चैन मिलता है न पीड़ा। इसकी कोई वजह मालूम नहीं होती, जबकि रूह के नये जन्म में लाने का मक़सद सिर्फ़ इनाम और सजा है मगर ये कहा जए कि इसका दुनिया में आके मर जाना ही इसके इनाम और सज़ा के लिए काफ़ी है तो फिर इसके आगे सिलसिला चलने की कोई वजह नहीं, जबकि इस दौर में कुछ ऐसे कर्म नहीं जिसके लिए सज़ा और इनाम का मौक़ा हो। इन सबसे हट कर इस कभी न ख़त्म होने वाले सिलसिले पर एक बुनियादी ऐतराज़ है और वह ये कि इनाम के मानी में ये बात छिपी हुई है कि इसके पहले कोई काम हो चुका है । इसलिये एक ऐसा आख़िरी बिन्दु मानना ज़रूरी है कि जहाँ पर काम हो और वह काम इनाम के तौर पर न हो । इस तरह ये सिलसिला सिमट जाता है। और अब पहले इन्सान के बारे में सवाल किया जाएगा कि क्या वह दुनिया में ख़ुशी और ग़म दोनों से ख़ाली रहा होगा। हलांकि ये बात प्रकृति के क़ानून से बिल्कुल उलटी है। आर्यों की तरफ़ से आवागमन के सबूत में कुर्आन की इन आयतों को पेश किया जाता है जिन में पिछली कुछ समाजों के 'मस्ख़' यानी अच्छी सूरत से बुरी सूरत में बदल जाने का ब्यान किया गया है। यूँ भी 'मस्ख़' इन नतीजों से बिल्कुल अलग चीज़ है। 'मस्ख़' में रूह इस जिस्म को नहीं छोड़ती बल्कि इसी पिण्ड का रूप बदल जाता है और आवागमन में वह पहला इन्सान मर जाता है, इसकी लाश बेजान हो जाती है और ये रूह यहां से निकल कर किसी मां के पेट से जल्दी ही पैदा होने वाले बच्चे के अन्दर पहुँचती है और इसके साथ पैदा होती है। भला इसका उससे क्या लगाव है। फिर ये कि रूप बदलना सिर्फ़ कुछ समाजों, गुटों के लिए दुनियावी अज़ाब (प्रकोप) के रूप में बयान किया गया है, इससे ये कहां साबित होता है कि इनाम और सज़ा के आ़म सिस्टम का सिद्धाँत यही है और इसके अलावा आख़िरत का दिन कोई चीज़ ही नहीं है ।

आवागमन के मानने से इन्सानों के कर्मों और उस की ज़िन्दगी उसके अपने आपे और इच्छा में नहीं है, क्योंकि पहले चक्कर में जैसे काम किये होंगे उसी तरह की ज़िन्दगी उसे नसीब होगी। एक डाकू है तो वह उस डकैती पर मजबूर है क्योंकि ये नतीजा है उसके पिछले जन्म के कर्म का, और पिछला जन्म उसकी सकत व चाह की हदों से अब बाहर है। यहाँ इन्सान का हर आज उसके पिछले कल के साथ जुड़ा है और पिछली ज़िन्दगी उसके बस से बाहर। इसलिए इन्सान का कोई काल चक्र उसके बस में नहीं ठहरता और इस तरह इनाम और सज़ा का सवाल ही नहीं रहता।

बहरहाल अब देखिए कि चाल चलन और कर्म को सुधारने के लिए इनाम और सजा का कौन सा विश्वास ज़्यादा काम का और फ़ायदेवाला है। मालूम होना चाहिए कि इन्सान सचमुच जिस चीज़ से डरता है वह अपनी तकलीफ़ और अपने जान की पीड़ा से। कैसी ही हालत हो मगर वह समझ ले कि इसमें कोई तकलीफ़ नहीं है तो वह हरगिज़ उससे नहीं डरेगा। लोगों को अगले जन्म में किसी दूसरे रूप में पैदा हो जाना उसे बिल्कुल भी डरायेगा नहीं और इस बात का उस पर कोई असर नहीं पड़ेगा, क्योंकि वे जानते हैं कि जिस जन्म में वह पैदा होंगे उनकी प्रकृति और स्वभाव उसी जन्म के मुताबिक़ होगी और उन्हें हरिगज़ इसमें किसी मानसिक दुःख और तकलीफ़ का एहसास नहीं होगा।

दीवाना (पागल) हो जाना एक इन्सान के लिए कितना ही अफ़सोस के लायक़ हो मगर अफ़सोस दूसरे लाग करते हैं उसे खुद हरगिज़ इस पर अफ़सोस नहीं है

बल्कि हो सकता है कि वह इसमें मज़ा महसूस करता हो।

"दीवाना बाश ता ग़मे तू दीगराँ खुरन्द" ।

दीवाना बन जा ताकि तेरा दुःख दूसरे उठाएं।

और फिर अगर सज़ा की क़िस्म उस इन्सान के स्वभाव से मेल खाती भी हो, मिसाल के तौर पर ग़ल्ले (चावल, गेहूँ वग़ैरह) के चोर को चूहे की शक्ल या पानी के चोर को मेढक के रूप और किसी बड़े पाको-पाकीजा इन्सान के हत्यारे को गाय का रूप हालांकि इस ज़रिये से गाय बनने के बाद क़ातिल वह खुद एक बड़े वर्ग के नज़दीक पवित्र और पूज्यनीय हो गया।

इस तरह की सज़ा का हरगिज़ वह विचार नहीं है जो इन्सान के दिल दिमाग़ पर असर करे और उसको अपने कर्मो की देखरेख पर मजबूर करे। इसके ख़िलाफ जज़ा (इनाम) और सज़ा की जो छवि इस्लाम सामने लाता है उनमें आराम व तकलीफ़ का अनुभव और सुख व दुःख का एहसास ज़्यादा खुला है।

क़ुर्आन की ये आयतें पढ़िये :-

"और काफ़िरों की ख़्वाहिशों और हसरतें" वग़ैरह इससे सीधी तरह से सूझबूझ और समझ का अन्दाज़ा होता है और ये वह है जिससे अज़ाब (सज़ा) की अहमियत का असर दिलों पर पड़ता है और कर्म को सुधारने की चिंता बैठ जाती है।

बेशक इस्लाम के विश्वास में भी इस दुनिया में इनाम और सज़ा का पता मिलता है मगर वह हर इन्सान को खुद उसी जन्म में कि जिसमें उसने कर्म किये हैं। हो सकता है कि उसको किसी अच्छे कर्मों के बदले में अल्लाह की तरफ़ से कुछ नेमतें दी जाएं या किसी बुरे कर्म की सज़ा में उस पर कोई मुसीबत डाली जाए, मगर इससे आख़िरत के दिन की ज़रूरत और उसकी अहमियत पर कोई असर नहीं पड़ता और खुद ये ख़्याल कि हमें हमारे कर्म का फल इस दुनिया में भी मिल सकता है, दुनिया को उसके कर्म सुधारने का न्यौता देने का एक साधन है, जिस तरह ये आयत कि :

"अल्लाह किसी जनसमूह की हालत नहीं बदलता जब तक वे खुद अपने से न बदल जायें"।

जिस का फ़ायदा ये है कि ख़ुदा की तरफ़ से दिये जाने वाले इनाम में बदलाव उनके अपने हालात के बदलने का नतीजा होती है। ये इन्सान के 'अपने' को सुधारने और अपने कर्मो के परखने का एक सर्वश्रेष्ठ साधन है।

पिछले बयानों का निचोड़ः

ऊपर बयान की हुई बातों से साफ़ मालूम होता है कि वही सच्चे विश्वास जो इस्लाम की ओर से हमें मिले हैं वही इन्सान के कर्मों को सुधारने का बेहतरीन साधन हो सकते हैं।

अब अगर हम देखें कि हमारे मज़हबी लोग अपने कर्मो और शिष्टाचार के लेहाज़ से दूसरे धर्म के लोगों से अच्छे नहीं दिखते, बल्कि कई प्रकार से बुरे ही पाए जाते हैं तो हमें समझ लेना चाहिए कि ये विश्वास सही-सही हमारे दिलों में बैठ ही नहीं पाये हैं और हमारे दिमाग़ों पर पूरी तरह उनका असर नहीं पड़ा है ।

हमें कोशिश करनी चाहिए कि जिन विश्वासों का हम ज़बान से प्रचार करते हैं और उसकी नसीहत करते हैं, हमारे कर्मो और चाल चलन से भी उनका बयान होना चाहिए यानी हमारे चाल चलन से भी वही बातें ज़ाहिर होनी चाहिए जैसा हम ज़बान से कहते हैं तभी हम सही तरीक़े से उन विश्वासों के मानने वाले समझे जा सकते हैं ।

बहरहाल हम अगर अपने बच्चों को सही तौर पर मोमिन (आस्तिक) बनाने का ख़्याल रखते हैं तो बचपन ही से हमें इनको ऊपर बयान किये गये विश्वासों को सिखाना चाहिए, सिर्फ़ इस तरह नहीं कि उन्हें धार्मिक किताबों के शब्दों को रटा दिया जाए, बल्कि इस तरह कि वह विश्वास इनके दिमाग़ में बैठ जाएँ और वह उन्हें समझ ले और यक़ीन कर ले यहां तक कि उनके कालेज और स्कूल के जीवन में इनके इन विश्वासों पर अगर कोई एतराज़ (Objection) किया जाए तो वह जवाब न दे सकें न सही, मगर उन्हें बेचैनी ज़रूर पैदा हो जाए कि हमारे मज़हब (धर्म) पर ये एतराज़ हुआ है तो हमें इसका जवाब ढूँढ कर उनके सामने रखना चाहिए। अगर हमारी नौजवान पीढ़ी में ये खोजबीन का जज़्बा और कोशिश की ख़्वाहिश पैदा हो जाए तो यही उनके मज़हब की सुरक्षा का बहुत बड़ा क़िला होगा, क्योंकि हमारा धर्म ताक़तवर है वह एतराज़ (Objection) और लाँछनों से डगमगा नहीं सकता, मगर शर्त ये है कि इस एतराज़ के जवाब देने का ख़्याल और इससे जुड़ी हुई खोजबीन और जिज्ञासा का जज़्बा पैदा हो। (..........जारी)

इदारा

मुख्य समाचार

इस्लाम मुश्किलात पैदा करने के लिए नहीं आया, मुश्किलात मौलवी पैदा करते हैंः डाक्टर कल्बे सादिक़

यकुम शव्वाल 1433हि० मुताबिक़ 20 अगस्त 2012ई० सोमवार को मस्जिदे जामा आसफ़ी लखनऊ में हज़ारों फ़रज़न्दाने तौहीद ने मुफ़क्किरे इस्लाम डाक्टर मौलाना कल्बे सादिक़ साहब की इमामत में नमाज़े ईदुलफ़ित्र अदा की। इस मौक़े पर मौलाना कल्बे सादिक़ साहब ने ख़ुत्बा-ए-ईदुल फ़ित्र में फ़रमाया कि "ईद के चाँद के बारे में मेरे जो व्यूज़ हैं उन्हें मैं पहले ही वाज़ेह कर चुका हूँ, मैं हर तरह के इख़्तिलाफ़ात से बचना चाहता हूँ मैंने जो एस्टोनोमिकल कैलकुलेशन बेसिस पर पेशीन गोईयाँ शुरू की थीं वह किसी लीडरशिप के लिए नहीं बल्कि इसलिए थीं कि आपस में इत्तिहाद रहे, यह बहुत छोटी सी बात है, चाँद का एलान कोई चाँद पर जाना है, आज इन्सान मार्स पर पहुंच गया है, मिरीख़ पर चाँद की मिसाल मैं दूँ, कैसी है जैसे जौहरी मुहल्ले से मरहूम चौक सब्ज़ी मंडी। चाँद की दूरी है ढाई लाख मील और मिरीख़ की दूरी है छप्पन करोड़ किलोमीटर। आज एस्ट्रॉलोजी इतनी एडवाँस हो गई है। आप अगर ज़माने के साथ नहीं चलेंगे तो आप बहुत पीछे रह जायेगें। मैं किसी का दिल दुखाना नहीं चाहता, मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि आप सब पढ़े लिखे लोग, उलेमा-ए-किराम का, सबका एक जलसा हो जाये, मैं यह बताऊँ कि मैं इस पर अमल क्यों कर रहा हूँ? मेरे पास भी दलीलें हैं। मैं किसी की तौहीन नहीं करता, जो लोग कहते हैं कि चाँद देखकर ही रोज़ा खोलना चाहिए, उनके पास भी दलीलें हैं, मैं यह थोड़े ही कह रहा हूँ कि उनकी बात मोहमल है, दलीलें तो हर ज़माने में रहती हैं कुछ रवायतें पेश की जाती हैं, सुन्नी हज़रात रिवायत पेश करते हैं सहीह बुख़ारी से, मुझे बहुत अफ़सोस है कि वह कहते हैं कि रसूल[स०] ने फ़रमाया 'चाँद देखकर रोज़ा रखना शुरू करो और चाँद देखकर रोज़ा रखना बन्द करो', मैंने जब सहीह बुख़ारी शरीफ़ खोली तो मेरी चंदिया में गर्मी महसूस होने लगी, रिवायत का ख़त्ना कर रिवायत को मुसलमान कर लिया। पूरी रवायत यह है कि 'चाँद देखकर रोज़ा रखो और चाँद देखकर रोज़ा रखना बन्द करो', क्यों? इसके लिए कि मेरी उम्मत जाहिल है, उसके पास बिल्कुल इल्म नहीं है न उसको लिखना पढ़ना आता है न हिसाब करना आता है। मेरे भाईयों! आप मुझे बताईये कि जिसको लिखना पढ़ना और हिसाब करना आता हो वह चाँद देखकर तारीख़ नहीं तैय करेगा तो कैसे करेगा? यह मजबूरी है।

मैं ज़्यादा तफ़सील में नहीं जाना चाहता, रिवायत से बढ़कर आप आयत पर आ जायें, मैं सूरह-ए-हज देख रहा था, रिवायत ज़्यादा अहम है या आयत ज़्यादा अहम है? ज़ाहिर है आयत ज़्यादा अहम है, सूरह-ए-हज में इरशाद होता है कि 'ऐ इब्राहीम तुमने हमारा घर बनाया है अब तुम आम एलान कर दो कि लोगों आओ मेरे घर हज करने के लिए', लोग आयेंगे, क़यामत तक लोग आते रहेंगे मगर क्या इरशाद है कि पैदल आयेंगे, कैसे आयेंगे? पाँव-पाँव, और दूर दराज़ से दुबली पतली उँटनियों पर हज करने के लिए आयेंगे, तो हज करने के दो ही रास्ते हैं, पैदल चलिये या उँटनियो पर आईये। आज बताईये कौन दोनो रास्तों को अपनाता है? अब फ़्लाईट से नहीं पैदल या ऊँट पर ही जाईये, लोग समझते नहीं हैं बात को, असल हुक्म है मक़सद, कि आप काबे तक पहुँचें, पैदल या ऊँटनी से जाना है वसीला, ज़माना बदलेगा वसीला बदल जायेगा। इतनी सी बात आपको समझनी चाहिए कि ज़माने के तब्दील होने के साथ साथ वसीले तब्दील होते चले जाते हैं, आप देख रहे हैं कि क़िब्ला मालूम करने का तरीक़ा यह है कि मुसलमानों की क़ब्रों को देखकर तैय करो, तो अगर कहीं मुसलमान की क़ब्र न हो तो क्या पहले मुसलमान को मारकर उसकी क़ब्र बनायें और फिर क़िब्ला तैय करें? मस्जिदों की मीनारों से क़िब्ला तैय करो वह भी मसला ख़त्म हो गया, अब मस्जिद में एक ही मीनार रह गई है। ज़माना आसानी को देखता है। आधा इल्म जिहालत से ज़्यादा ख़तरनाक होता है। इस्लाम मुश्किलात पैदा करने के लिए नहीं आया, मुआफ़ कीजिएगा मुश्किलात मौलवी पैदा करते हैं, मौला नहीं। मौला ने फ़क़त आपके लिए आसानियाँ ही पैदा की हैं।"

क़ायदे मिल्लत की सरपरस्ती में लखनऊ में आलमी यौमुल क़ुद्स

क़िब्ला-ए-अव्वल की बाज़याबी और फ़िलस्तीन के बेगुनाह अवाम पर इस्राईली मज़ालिम के ख़िलाफ़ 17 अगस्त 2012 ई० मुताबिक़ 28 रमज़ानुल मुबारक 1433 हि० को क़ायदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद साहब की सरबराही में आलमी यौमुल क़ुद्स मनाया गया। इस मौक़े पर बादे नमाज़े जुमा मस्जिदे आसिफ़ी में जलसे से ख़िताब करते हुए मौलाना कल्बे जवाद साहब ने फ़रमाया कि तक़रीबन बत्तीस बरस क़ब्ल आयतुल्लाह ख़ुमैनी[रह०] ने रमज़ान के आख़िरी जुमे को यौमुल क़ुद्स क़रार देते हुए पूरी दुनिया के मुसलमानों से मुत्तहिद होकर क़िब्ला-ए-अव्वल की बाज़याबी के लिये "यौमुल क़ुद्स" मनाने की अपील की थी। उसी पर अमल करते हुए आज पूरी दुनिया में मुसलमान यौमुल क़ुद्स मनाते हैं।

क़ायदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद ने इस मौक़े पर इस्राईल की जानिब से फ़िलस्तीनी मुसलमानों पर होने वाले मज़ालिम का पर्दाफ़ाश किया। मौलाना ने आयतुल्लाह ख़ुमैनी[रह०] के हवाले से कहा कि अगर मुसलमान मुत्तहिद होकर इस्राईल पर एक एक बाल्टी पानी फेंके तो उसका वजूद मिट जायेगा। अगर मुसलमान मुत्तहिद होकर यौमे क़ुद्स मनायें तो फ़िलस्तीनी अवाम के मसायल हल हो जायेंगे और साथ ही साथ क़िब्ला-ए-अव्वल भी इस्राईल के नापाक क़ब्ज़े से आज़ाद हो जायेगा। इसी रोज़ शब में 8 बजे छोटा इमामबाड़ा हुसैनाबाद में भी 'क़ुद्स डे' मनाया गया। इसमे भी क़ायदे मिल्लत ने अपनी सदारती तक़रीर के ज़रिये मोमिनीन को अमरीका और इस्राईल की साज़िशों से आगाह फ़रमाया। आख़िर में बैतुल मुक़द्दस की रिहाई के लिए दुआयें की गईं।

इन्हिदामें जन्नतुल बक़ी के सिलसिले में लखनऊ में इहतिजाज

8 शव्वाल 1433 हि० मुताबिक़ 26 अगस्त (इतवार) को इमामबाड़ा सिब्तैनाबाद लखनऊ में मुरसले आज़म हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा[स०] की पारा-ए-जिगर हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स०] के रौज़े को सऊदी हुकूमत के ज़रिये 1925 ई० में मिसमार कर दिये जाने को लेकर क़ायदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद की सरबराही में एहतिजाज हुआ। इस मौक़े पर उलमा और मोमिनीन ने हज़ारों की तादाद मे शिरकत की, ख़ान-ए-फ़रहंग जम्हूरिया-ए-इस्लामी ईरान, दिल्ली से तशरीफ़ लाये नुमाईन्दा-ए-वली फ़क़ीह हुज्जतुल इस्लाम आक़ाये महदवी पुर ने भी शिरकत फ़रमाई और अपनी तक़रीर से सामईन को सऊदी हुकूमत के मज़ालिम और उनकी साजिशों से आगाह किया। क़ायदे मिल्लत ने अपने सदारती तक़रीर में फ़रमाया कि जन्नतुल बक़ी का मसला सिर्फ़ शियों का मसला ही नहीं है बल्कि यह इस्लामी मसला है क्योंकि वहाँ पर हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स०], इमामे हसन मुज्तबा[अ०], इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०], इमाम मोहम्मद बाक़र[अ०] और इमाम जाफ़रे सादिक़[अ०] के मज़ारात के अलावा और बुज़ुर्गों की भी क़ब्रें हैं।

जल्से के आख़िर में मोमिनीन के कसीर मजमे के सऊदी हुकूमत मुर्दाबाद, अमरीका मुर्दाबाद, इस्राईल मुर्दाबाद के नारों से फ़िज़ा गूँज उठी।

मुख्यमंत्री अखिलेश यादव जी ने क़ायदे मिल्लत से मुलाक़ात की।

20 अगस्त को ईदुल फ़ित्र की नमाज़ के बाद वज़ीरे आला जनाब अखिलेश यादव जी क़ायदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद साहब से उनके घर पर मुलाक़ात करने तशरीफ़ लाये और क़ायदे मिल्लत को ईदे सईद की मुबारबाद पेश फ़रमाई। ख़्याल रहे कि इससे पहले क़ायदे मिल्लत ने चूँकि मुसलमानों बिलखुसूस शियों के मुख़्तलिफ़ मसायल हल करने के लिए यू०पी० सरकार से चन्द मुतालिबात किये थे जिसमें से चन्द के सिवा अक्सर मुतालिबात के पूरा होने में हद दर्जा ताख़ीर की वजह से क़ायदे मिल्लत यू०पी० सरकार से नाराज़ थे। मगर ईदुल फ़ित्र के मौक़े पर जनाब अखिलेश यादव ने क़ायदे मिल्लत से मुलाक़ात के दौरान उनकी तमाम माँगों को पूरा करने की यक़ीन दहानी कराई और कहा कि हम तमाम मुतालिबात पूरे करेंगे बस ज़रा सा वक़्त और दें।